दृष्टि The Vision

एडिटोरियल

(संग्रह)

सितम्बर भाग-2, 2020

दृष्टि, 641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोन: 8750187501
ई-मेल: online@groupdrishti.com

अनुक्रम

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम **5**

- संसद की भूमिका का संकुचन, कार्यवाही एवं कुछ सुझाव 5
- मीडिया की स्वतंत्रता 7
- श्रम संहिता और श्रमिकों के अधिकार 8
- NGO की भूमिका 11
- संसदीय समिति प्रणाली 13

आर्थिक घटनाक्रम **15**

- किसान विरोध 15

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम **17**

- संयुक्त राष्ट्र सुधार और भारत 17

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी **19**

- जेनेटिक इंजीनियरिंग: लाभ और खतरे 19

नोट :

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी **22**

- कोयला आधारित ऊर्जा की आवश्यकता 22
- मूल्य निर्धारण और कार्बन कर 23

दृष्टि The Vision

नोट :

नोट :

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम

संसद की भूमिका का संकुचन, कार्यवाही एवं कुछ सुझाव

संदर्भ

14 सितंबर से जारी संसद का मानसून सत्र, कोरोना वायरस महामारी के दौरान विधायिका द्वारा विचारणीय मुद्दों का द्योतक है। विधि निर्माताओं और विधायिका में काम करने वाले कर्मचारियों की स्वास्थ्य सुरक्षा को बनाए रखते हुए ये निकाय लोकतंत्र में अपनी केंद्रीय भूमिका कैसे निभाते हैं? कई राज्यों ने बहुत कम सत्र आयोजित किये हैं - कुछ सिर्फ एक दिन के लिये आयोजित हुए हैं- जिसमें उन्होंने कई अध्यादेशों को मंजूर किया है और शायद ही पिछले कुछ महीनों में कार्यपालिका के किन्हीं भी कार्यों पर प्रश्न उठाए गए हैं। संसद शारीरिक दूरी की पालन करेगी, शून्य काल (जिसमें सदस्य अपने निर्वाचकों एवं व्यापक जनहित के मुद्दे उठाते हैं) को रद्द कर दिया गया है और प्रश्न काल (जिसमें मंत्रियों को सदस्यों द्वारा उठाये गए प्रश्नों का उत्तर देना होता है) को भी रद्द कर दिया गया है। सरकार के पास निर्णय लेने एवं विभिन्न सार्वजनिक कार्यों को करने का जनादेश होता है। यह विधायिका के प्रति जवाबदेह होती है जो इस पर सवाल उठा सकती है और एक विशेष स्थिति में, यहाँ तक कि इसे परिवर्तित भी कर सकती है। विधायिका नियमित चुनावों के माध्यम से नागरिकों के प्रति जवाबदेह होती है और यदि इसके कानून एवं नीतियाँ जनता के लिये लाभकारी नहीं समझी जाती हैं तो इसे मतदान के माध्यम से हटाया जा सकता है। अंत में, संवैधानिक न्यायालयों से यह सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है कि सभी कार्य संविधान की सीमाओं के भीतर किये गए हैं और विधायिका द्वारा बनाए गए कानून भी संविधानसम्मत हैं।

कॉन्टेक्ट ट्रेसिंग का मामला

एक उदाहरण ब्रिटिश संसद के कार्यों और हमारी संसद के मध्य अंतरों का वर्णन करता है। जब एक कॉन्टेक्ट ट्रेसिंग एप्लिकेशन के विचार की कल्पना की गई थी, तब ब्रिटेन की मानवाधिकारों पर संयुक्त संसदीय समिति ने प्रस्तावों की जाँच की। मई की शुरुआत में प्रकाशित एक रिपोर्ट "मानवाधिकार और COVID-19 पर सरकार की प्रतिक्रिया: डिज़िटल कॉन्टेक्ट ट्रेसिंग" में, इसने सिफारिश की कि एक ऐप का उपयोग केवल तभी किया जा सकता है जब इसे सक्षम बनाने के लिये एक विशिष्ट प्राथमिक कानून हो, और ऐसा कानून यह सुनिश्चित करे कि डेटा केवल COVID-19 के प्रसार को रोकने के सीमित उद्देश्य के लिये एकत्र किया गया है, डेटा को तृतीय-पक्ष के साथ साझा करने पर रोक लगाई जाए, डेटा को केवल एक केंद्रीय डेटाबेस में तभी अपलोड किया जाए जब व्यक्ति की कोरोना जाँच पॉज़िटिव हो अथवा पॉजिटिव होने का संदेह हो और डेटा संग्रहित करने के लिये समय सीमित किया जाए। इसका उत्तरदायित्व संभालने वाले मंत्री को प्रत्येक 21 दिनों में कॉन्टेक्ट ट्रेसिंग की प्रभावकारिता के साथ-साथ डेटा सुरक्षा और गोपनीयता की रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी। इसके विपरीत, भारत ने कार्यकारी निर्णय के माध्यम से आरोग्य सेतु एप की शुरुआत की, और इस पर अपनी स्थिति स्पष्ट नहीं की कि क्या यह अनिवार्य है (उदाहरण के लिये, हवाई यात्रा के दौरान, या मेट्रो रेल यात्रा के दौरान)। यह सब एक विशिष्ट कानून या किसी संसदीय निरीक्षण के बिना किया गया है। वास्तव में, संसदीय निरीक्षण पिछले छह महीनों के दौरान बड़े पैमाने पर हुआ ही नहीं हैं।

अधिसूचनाओं की बाढ़

175 दिनों के बाद संसद की बैठक होगी, आम चुनाव के हस्तक्षेप के बिना संसदीय बैठक न होने की यह सबसे लंबी अवधि है और छह महीने की संवैधानिक सीमा से बस थोड़ी ही कम है। संसदीय समितियों की लगभग चार महीने तक बैठक नहीं हुई थी, और उसके बाद केवल व्यक्तिगत बैठकें हुईं हैं जिनमें जोखिम और यात्रा प्रतिबंध को देखते हुए कम उपस्थिति दर्ज़ हुई है। वहीँ इसके विपरीत कई अन्य देशों में अधिवेशनों एवं समितियों दोनों ने सदस्यों को घर से ही इनमें भाग लेने में सक्षम बनाने के लिये प्रौद्योगिकी को अपनाया है। इस अवधि में, 900 से अधिक केंद्रीय एवं लगभग 6,000 राज्य सरकार की अधिसूचनाएँ जारी की गई हैं जो महामारी के प्रबंधन से संबंधित हैं। यह अन्य विषयों पर सूचनाओं के अतिरिक्त है। एक कामकाजी संसद या समितियों की अनुपस्थिति का अर्थ है कि सरकारी कार्यों की कोई जाँच या मार्गदर्शन नहीं किया गया है।

जब संसद की बैठक हो तो संसद को संकट के प्रति सरकार की प्रतिक्रिया को देखना चाहिये। हालाँकि, ऐसा करना एक सतत् मार्गदर्शन तंत्र के बजाय पोस्टमार्टम विश्लेषण अधिक होगा। यह "कम कीमत पर खरीदें, उच्च कीमत पर बेचें" की पुरानी स्टॉक मार्केट की सलाह की तरह है, जो कि निवेश निर्णय लेने में किसी का उचित मार्गदर्शन नहीं करती है। चीजें अनुरूप नहीं होती हैं तो किसी के पास नुकसान उठाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता है।

नोट :

न्यायालयिक हस्तक्षेप

कई नीतिगत मुद्दों में न्यायिक हस्तक्षेप से संसदीय निरीक्षण की कमी को पूर्ण किया गया है। उदाहरण के लिये, सरकार द्वारा लॉकडाउन से संबंधित कार्यों और प्रवासियों को होने वाली कठिनाइयों पर संसद द्वारा प्रश्न उठाये जाने चाहिये थे। संसदीय मंचों की चर्चाओं से सरकार को देश भर में ज़मीनी हालात पर प्रतिक्रिया प्राप्त करने और सरकार को उनके अनुरूप कार्य करने में सहायता मिलती। हालाँकि, इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया, जो नीतिगत विकल्पों को संतुलित करने के लिये प्रथम स्थान नहीं है। हालाँकि न्यायालय के निर्देशों का पालन किया जाना चाहिये जो कार्यान्वयन के साथ विकासशील मुद्दों से निपटने के लिये आवश्यक कमियों को दूर करते हैं। एक और उदाहरण लेते हैं जिसमें न्यायालय ने दूरसंचार कंपनियों को सरकार को बकाया चुकाने की अवधि को सीमित करने का फैसला किया है और कैबिनेट के एक फैसले को खारिज कर दिया। यह एक नीतिगत मामला है जो दूरसंचार कंपनियों, उपभोक्ताओं (जो मूल्य वृद्धि या संभावित एकाधिकार होने से प्रभावित होते हैं), और बैंकों (जो दूरसंचार कंपनियों द्वारा डिफॉल्ट का सामना कर सकते हैं) के हितों को संतुलित करता है। इस मुद्दे को सरकार द्वारा संसद के निरीक्षण के साथ सबसे अच्छी तरह से निपटाया जा सकता है। हाँ लेकिन यदि यह अवैध (या इसमें भ्रष्टाचार कहें) है, तो इस मामले को अदालतों द्वारा निपटान किया जाना चाहिये।

लघु सत्र, अधिक काम

संसद को अपनी संवैधानिक रूप से अनिवार्य भूमिका को पुन: प्राप्त करना चाहिये। इसके पास 18 दिन के छोटे सत्र में चर्चा करने के लिये बड़ी संख्या में मुद्दे हैं। दोनों सदन एक ही भौतिक स्थान का उपयोग करने के लिये पालियों में काम कर रहे हैं जो किसी दिन विस्तारित बैठक के दायरे को सीमित करता है। अंतिम सत्र के बाद की अवधि में, सरकार ने 11 अध्यादेश जारी किये हैं। इनमें से पाँच COVID-19 संकट और लॉकडाउन से संबंधित हैं: कर देने की की तारीखों का आगे बढ़ाने, नए दिवालिया मामलों पर स्थगन, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के लिये सुरक्षा, संसद सदस्यों एवं मंत्रियों के वेतन और भत्तों में अस्थायी कटौती। अन्य छह में से, दो होम्योपैथी और चिकित्सा की भारतीय प्रणालियों को विनियमित करने वाली परिषदों के बोर्डों के अधिपत्य से संबंधित हैं, एक भारतीय रिज़र्व बैंक को सहकारी बैंकों को विनियमित करने की अनुमति देता है (एक समान विधेयक संसद में लंबित है), और तीन कृषि बाज़ारों से संबंधित हैं (अनुबंध खेती और मंडियों के बाहर व्यापार की अनुमति)। हालाँकि COVID-19 से संबंधित अध्यादेशों का एक अस्थायी अनुप्रयोग है, संसद को विस्तृत जाँच के लिये संबंधित समितियों को दीर्घकालिक निहितार्थ वाले (जैसे कि कृषि एवं बैंकिंग से संबंधित) मुद्दों को संदर्भित करना चाहिये।

मुख्य मुद्दे

पिछले छह महीनों में कई आयोजन हुए हैं, जिन पर गहन चर्चा की आवश्यकता है। इसमें कोरोना वायरस के प्रसार से निपटने और मृत्यु दर को सीमित करने के तरीके शामिल हैं और आने वाले महीनों में संभावित मार्ग जो विशेष कार्रवाई को निर्देशित कर सकते हैं। आर्थिक वृद्धि, जो पिछले दो वर्षों से घट रही है, इस वित्त वर्ष की पहली तिमाही में इसमें भारी गिरावट आई है। इससे रोज़गार सृजन, बैंकिंग प्रणाली की स्थिरता और सरकारी वित्त के लिये दूरगामी प्रभाव पड़े हैं। सरकार के अनुपूरक बजट लाने की संभावना है; वास्तव में, जनवरी से बुनियादी पूर्वानुमानों में परिवर्तनों को देखते हुए केंद्रीय बजट पर एक नई दृष्टि डालने की आवश्यकता है। चीन सीमा पर स्थिति की भी चर्चा किये जाने की भी आवश्यकता है।

प्रश्न काल की अनुपस्थिति और एक लघु शून्य काल संसद सदस्यों को सरकार की जवाबदेही रखने और सार्वजनिक हित का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता को प्रतिबंधित करता है। संसद के सदस्यों को अन्य उपलब्ध विकल्पों का उपयोग यह सुनिश्चित करना चाहिये कि नए कानूनों और व्यय प्रस्तावों को विस्तृत चर्चा के बाद ही पारित किया जाए। सांसदों का कर्तव्य है कि वे भारतीय नागरिकों के प्रति सरकार के काम की जाँच करने और नीति का मार्गदर्शन करने में अपनी भूमिका को पूर्ण करें। कोरोना वायरस की वजह से लघु सत्र एवं बाधाओं के बावज़ूद, उन्हें ऐसा करने के लिये सीमित समय का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करना चाहिये। उन्हें हमारे लोकतंत्र में अपनी सही भूमिका वापस लाने की आवश्यकता है।

मुख्य परीक्षा प्रश्न: COVID-19 महामारी ने किस प्रकार लोकतंत्र में संसद की भूमिका को प्रभावित किया है? COVID-19 के परिप्रेक्ष्य में संसद के विधायी अधिकारों की महत्ता को बनाए रखने के लिये कुछ नवाचारी कदमों की चर्चा करें।

मीडिया की स्वतंत्रता

संदर्भ

हाल ही में, उच्च न्यायपालिका ने एक आदेश पारित किया जो मीडिया के विनियमन से संबंधित है। एक आदेश में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने राज्य के पूर्व महाधिवक्ता से जुड़े एक मामले के संबंध में कुछ भी उल्लेख करने से, मीडिया और यहाँ तक कि सोशल मीडिया पर प्रतिबंध लगा दिया। दूसरे मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक अंतरिम आदेश पारित किया जिसने एक समाचार चैनल के शेष एपिसोड के प्रसारण को रोक दिया, क्योंकि यह एक विशेष समुदाय को तिरस्कृत कर रहा था। हालाँकि दोनों आदेशों के प्रभाव वाक् स्वतंत्रता और जानकारी प्राप्त करने के नागरिक अधिकारों पर होंगे, उन्हें अलग-अलग संदर्भों में देखा जाना चाहिये। जहाँ प्रथम आदेश संभावित मानहानि या गोपनीयता के हस्तक्षेप को रोकने या मुकदमे या जाँच की निष्पक्षता की रक्षा करने के लिये परिकल्पित किया जा सकता है, वहीं दूसरे को घृणा के प्रचार पर रोक लगाने के रूप में देखा जा सकता है। इस संदर्भ में, व्यक्तिगत अधिकारों एवं स्वतंत्र प्रेस के मध्य उचित संतुलन की आवश्यकता है।

प्रेस की स्वतंत्रता

- संविधान, अनुच्छेद 19 के तहत वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी देता है, जो वाक् स्वतंत्रता इत्यादि के संबंध में कुछ अधिकारों के संरक्षण से संबंधित है।
- प्रेस की स्वतंत्रता को भारतीय कानूनी प्रणाली द्वारा स्पष्ट रूप से संरक्षित नहीं किया गया है, लेकिन यह संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (क) के तहत संरक्षित है, जिसमें कहा गया है - "सभी नागरिकों को वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होगा"।
- वर्ष 1950 में, रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि सभी लोकतांत्रिक संगठनों की नींव पर प्रेस की स्वतंत्रता पर आधारित होती है।
- हालाँकि, प्रेस की स्वतंत्रता भी असीमित नहीं होती है। एक कानून इस अधिकार के प्रयोग पर केवल उन प्रतिबंधों को लागू कर सकता है, जो अनुच्छेद 19 (2) के तहत इस प्रकार हैं-
  - भारत की संप्रभुता और अखंडता के हितों से संबंधित मामले, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता या न्यायालय की अवमानना के संबंध में, मानहानि या अपराध का प्रोत्साहन।

स्वतंत्र मीडिया का महत्त्व

- स्वतंत्र मीडिया विचारों की मुक्त चर्चा को बढ़ावा देता है जो व्यक्तियों को राजनीतिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने, निर्णय लेने की अनुमति देता है और परिणामस्वरूप समाज को सशक्त करता है - विशेष रूप से भारत जैसे बड़े लोकतंत्र में।
- लोकतंत्र के सुचारू संचालन के लिये विचारों का स्वतंत्र आदान-प्रदान, सूचना और ज्ञान का आदान-प्रदान, बहस और विभिन्न दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण होती है। जनता की आवाज़ होने के आधार पर स्वतंत्र मीडिया, उन्हें राय व्यक्त करने के अधिकार के साथ सशक्त बनाता है। इस प्रकार, लोकतंत्र में स्वतंत्र मीडिया महत्त्वपूर्ण है।
- स्वतंत्र मीडिया के साथ, लोग सरकार के निर्णयों पर प्रश्न करके अपने अधिकारों का प्रयोग करने में सक्षम होते हैं। ऐसा माहौल तभी बनाया जा सकता है जब प्रेस की स्वतंत्रता प्राप्त हो।
- अत: मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जा सकता है, अन्य तीन स्तंभ विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं।

वर्तमान में मीडिया से संबंधित मुद्दे

- निजता का अधिकार: निजता का अधिकार प्राकृतिक अधिकारों से उत्पन्न होता है, जो बुनियादी, निहित एवं अपरिहार्य अधिकार होते हैं।
  - अनुच्छेद 21 जो जीवन के अधिकार की गारंटी देता है, गोपनीयता के अधिकार की भी गारंटी देता है।
  - कई बार, मीडिया ने निष्पक्ष रिपोर्टिंग की अपनी सीमाएँ पार की हैं और व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप किया है।
  - आरुषि तलवार हत्या मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी जाँच में पारदर्शिता और गोपनीयता दो अलग-अलग चीजें हैं। जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने मीडिया के एक वर्ग की रिपोर्टिंग पर प्रश्न उठाए जिसके परिणामस्वरूप पीड़ित और उसके परिवार के सदस्यों की प्रतिष्ठा धूमिल हुई।

- मीडिया ट्रायल: सहारा बनाम सेबी (2012) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि अदालत स्वतंत्र ट्रायल और एक स्वतंत्र प्रेस के अधिकार के संतुलन पर निवारक राहत प्रदान कर सकती है।
- इसके अलावा, कई बार सर्वोच्च न्यायालय का विचार था कि मीडिया मुद्दों को इस तरह से कवर करता है कि यह एक ट्रायल की तरह लगता है।
- चूँकि मीडिया द्वारा इस तरह के ट्रायलों से न्यायपालिका और न्यायिक कार्यवाही की प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना होती है, अत: यह न्यायपालिका के कामकाज में भी हस्तक्षेप करता है।
- पेड न्यूज़: पेड न्यूज़ और फेक न्यूज़ सार्वजनिक धारणा को तोड़-मरोड़ सकती हैं एवं समाज के अंदर विभिन्न समुदायों के मध्य घृणा, हिंसा, तथा असामंजस्य उत्पन्न कर सकती हैं।
- निष्पक्ष पत्रकारिता की अनुपस्थिति एक समाज में सत्य की झूठी प्रस्तुति को जन्म देती है जो लोगों की धारणा और विचारों को प्रभावित करती है।

आगे की राह

- एक संस्थागत ढाँचा मज़बूत करना: भारतीय प्रेस परिषद, एक नियामक संस्था, मीडिया को चेतावनी दे सकती है और विनियमित कर सकती है अगर यह पाती है कि एक समाचार पत्र या समाचार एजेंसी ने मीडिया नैतिकता का उल्लंघन किया है।
  - न्यूज ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (एनबीए) को वैधानिक दर्ज़ा प्रदान किया जाना चाहिये जो निजी टेलीविजन समाचार एवं करंट अफेयर्स ब्रॉडकास्टर्स का प्रतिनिधित्व करता है।
- फेक न्यूज़ से निपटना: मीडिया में विश्वास बहाल करने के लिये मीडिया स्वतंत्रता को कम किये बिना मीडिया सामग्री से छेड़छाड़ और फेक न्यूज़ का सामना करने के लिये सार्वजनिक शिक्षा, नियमों को मज़बूत करने तथा प्रौद्योगिकी कंपनियों द्वारा न्यूज़ क्यूरेशन हेतु उपयुक्त एल्गोरिदम बनाने के प्रयासों की आवश्यकता होगी।
  - फेक न्यूज़ पर अंकुश लगाने के भविष्य के किसी भी कानून को पूरी तस्वीर को ध्यान में रखना चाहिये और मीडिया को दोष नहीं देना चाहिये एवं बिना सोचे प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिये; नये मीडिया के इस युग में कोई भी अज्ञात लाभों के लिये खबर बना सकता है और प्रसारित कर सकता है।
- मीडिया द्वारा नैतिकता का पालन: यह महत्त्वपूर्ण है कि मीडिया सत्यता और सटीकता, पारदर्शिता, स्वतंत्रता, औचित्यता एवं निष्पक्षता, उत्तरदायिता जैसे मुख्य सिद्धांतों का पालन करती रहे।

निष्कर्ष

स्वतंत्र अभिव्यक्ति और अन्य समुदाय एवं व्यक्तिगत अधिकारों के मध्य संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता है; यह ज़िम्मेदारी केवल न्यायपालिका द्वारा नहीं बल्कि उन सभी लोगों द्वारा वहन की जानी चाहिये जो इन अधिकारों का प्रयोग करते हैं।

मुख्य परीक्षा प्रश्न (निबंध के लिये भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण):

मीडिया को 'अभिव्यक्ति के अधिकार' के तहत सूचनाओं के प्रसारण का अधिकार है परंतु यह प्रसारण 'युक्तियुक्त निर्बंधन' के तहत होना चाहिये। मीडिया की स्वतंत्रता से संबंधित हालिया घटनाओं की चर्चा करते हुए इस कथन का परीक्षण करें कि क्या मीडिया वास्तव में अपने इस अधिकार का दुरुपयोग कर रहा है? यदि हाँ, तो दुरुपयोग को रोकने के उपायों की चर्चा करें।

श्रम संहिता और श्रमिकों के अधिकार

संदर्भ

श्रम संविधान की समवर्ती सूची के अंतर्गत आता है। हाल ही में संसद ने औद्योगिक संबंधों पर, व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्य स्थिति और सामाजिक सुरक्षा पर तीन श्रम संहिताएँ पारित की हैं जो देश के पुरातन श्रम कानूनों को सरल बनाने और श्रमिकों के लाभों से समझौता किये बिना आर्थिक गतिविधियों को गति देने के लिये प्रस्तावित हैं। ये श्रम संहिता भारत में श्रम संबंधों पर एक परिवर्तनकारी प्रभाव डाल सकती हैं। श्रम संहिता अधिनियम (Code on Wages Act 2019) के साथ ये श्रम पर केंद्रीय और राज्य कानूनों की व्यापकता को समेट कर व्यवसाय के संचालन को आसान बना सकते हैं। श्रम संहिता को द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग (2002) की सिफारिशों पर अपनाया गया था, जिसमें उद्योगों, व्यवसायों और क्षेत्रों में 100 राज्य कानूनों एवं 40 केंद्रीय कानूनों को समेकित करने का सुझाव दिया गया था।

मौजूदा श्रम संहिता में समाहित कानून

- सामाजिक सुरक्षा संहिता सामाजिक सुरक्षा पर नौ कानूनों की जगह लेती है जिसमें कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952 और मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 शामिल हैं।
- औद्योगिक संबंध संहिता औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1974, व्यापार संघ अधिनियम, 1926, और औद्योगिक रोज़गार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946।
- व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्य स्थिति संहिता 13 श्रम कानूनों की जगह लेती है।

तीन श्रम संहिताओं में मुख्य प्रस्ताव

औद्योगिक संबंध संहिता विधेयक, 2020

- इस संहिता के महत्त्वपूर्ण प्रावधानों में कंपनियों में काम करने वाले श्रमिकों को काम पर रखने और उनकी छंटनी करने को आसान बनाना है।
  - औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कार्यरत श्रमिकों के लिये 300 से अधिक श्रमिकों को नियुक्त करने वाली कंपनियों को आचरण के नियमों की आवश्यकता नहीं होगी। वर्तमान में 100 श्रमिकों तक काम करने वाले प्रतिष्ठानों के लिये यह अनिवार्य है।
- विधेयक के अनुसार, औद्योगिक प्रतिष्ठान में कार्यरत श्रमिकों को कम-से-कम 14 दिन पहले नोटिस देना होगा यदि वे हड़ताल पर जाना चाहते हैं।
  - वर्तमान में केवल सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं में श्रमिकों को हड़ताल करने के लिये नोटिस देने की आवश्यकता होती है।
- इसके अलावा 20 या अधिक श्रमिकों को नियुक्त करने वाले प्रत्येक औद्योगिक प्रतिष्ठान में श्रमिकों की शिकायतों से उत्पन्न होने वाले विवादों के समाधान के लिये एक या एक से अधिक शिकायत निवारण समितियाँ होंगी।
- संहिता में सेवानिवृत्त श्रमिकों की मदद करने के लिये एक कौशल कोष की स्थापना का प्रस्ताव है।

व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्य स्थिति सहिंता विधेयक, 2020

- यह नियोक्ताओं और श्रमिकों के कर्त्तव्यों को पूरा करता है और विभिन्न क्षेत्रों के लिये सुरक्षा मानकों की परिकल्पना करता है, जिसमें श्रमिकों के स्वास्थ्य और काम करने की स्थिति, काम के घंटे, छुट्टियाँ आदि शामिल हैं।
- संहिता संविदाकर्मियों के अधिकार को भी मान्यता देती है।
- संहिता नियोक्ताओं को किसी भी क्षेत्र में आवश्यकता के आधार पर और बिना किसी प्रतिबंध के निश्चित अवधि के आधार पर श्रमिकों को नियुक्त करने की सुविधा प्रदान करती है।
  - इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सामाजिक सुरक्षा जैसे वैधानिक लाभों के लिये और स्थायी कर्मचारियों को उनके स्थायी समकक्षों के बराबर वेतन देने का भी प्रावधान करता है।
- यह भी अनिवार्य है कि किसी भी श्रमिक को किसी भी प्रतिष्ठान में प्रतिदिन 8 घंटे या सप्ताह में 6 दिन से अधिक काम करने की अनुमति नहीं होगी।
  - ओवरटाइम के मामले में किसी कर्मचारी को उसके वेतन का दोगुना भुगतान किया जाना चाहिये। यह उन छोटे प्रतिष्ठानों पर भी लागू होगा जिनके पास 10 श्रमिक हैं।
- यह संहिता लैंगिक समानता भी लाता है और महिला कर्मचारियों को सशक्त बनाता है। महिलाएँ सभी प्रकार के कार्यों के लिये सभी प्रतिष्ठानों में नियुक्त होने की हकदार होंगी और उनकी सहमति से सुरक्षा एवं अवकाश तथा काम के घंटे से संबंधित स्थितियों के अधीन सुबह 6 बजे से पहले और शाम 7 बजे के बाद काम कर सकती हैं।
  - पहली बार श्रम संहिता भी ट्रांसजेंडरों के अधिकारों को मान्यता देती है। यह औद्योगिक प्रतिष्ठानों को पुरुष, महिला और ट्रांसजेंडर कर्मचारियों के लिये वॉशरूम, स्नान स्थल और लॉकर रूम प्रदान करना अनिवार्य बनाता है।

सामाजिक सुरक्षा संहिता विधेयक, 2020

- यह नौ सामाजिक सुरक्षा कानूनों की जगह लेगा जिनमें मातृत्व लाभ अधिनियम, कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, कर्मचारी पेंशन योजना, कर्मचारी मुआवजा अधिनियम अन्य शामिल हैं।

- संहिता असंगठित क्षेत्र में काम करने वालों श्रमिकों जैसे कि प्रवासी श्रमिकों, गिग श्रमिकों और प्लेटफॉर्म श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा कवरेज को सार्वभौमिक बनाती है।
- पहली बार सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों को कृषि श्रमिकों के लिये भी बढ़ाया जाएगा।
- संहिता सभी प्रकार के कर्मचारियों के लिये ग्रेच्युटी भुगतान प्राप्त करने की समय सीमा को पांच वर्ष से एक वर्ष की निरंतर सेवा तक कम करता है, जिसमें निश्चित अवधि के कर्मचारी, अनुबंध श्रम, दैनिक और मासिक वेतन कर्मचारी शामिल हैं।

श्रम संहिताओं के लाभ

- जटिल कानूनों का समेकन और सरलीकरण: ये तीन संहिता 25 केंद्रीय श्रम कानूनों को कम करके श्रम कानूनों को सरल बनाती हैं।
  - यह उद्योग और रोज़गार को बढ़ावा देगा और परिभाषाओं की बहुलता और व्यवसायों के लिये प्राधिकरण की बहुलता को कम करेगा।
- एकल लाइसेंसिंग तंत्र: संहिता एकल लाइसेंसिंग तंत्र प्रदान करती हैं। यह लाइसेंसिंग तंत्र में महत्त्वपूर्ण सुधार की शुरुआत करके उद्योगों को प्रेरित करेगा। वर्तमान में उद्योगों को विभिन्न कानूनों के अंतर्गत अपने लाइसेंस के लिये आवेदन करना होता है।
- आसान विवाद समाधान: संहिता औद्योगिक विवादों से निपटने वाले पुरातन कानूनों को भी सरल बनाती हैं और उन विवाद प्रक्रियाओं को संशोधित करती हैं जो विवादों के शीघ्र समाधान के लिये मार्ग प्रशस्त करेंगी।
- व्यापार करने में आसानी: उद्योग और कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार, इस तरह के सुधार से निवेश को बढ़ावा मिलेगा और व्यापार करने में आसानी होगी। यह जटिलता को कम कर देता है और आंतरिक विरोधाभास बढ़ाता है तथा सुरक्षा/कार्य स्थितियों पर नियमों का आधुनिकीकरण करता है।
- अन्य लाभ: तीन संहिता निश्चित अवधि के रोज़गार को बढ़ावा देंगी, ट्रेड यूनियनों के प्रभाव को कम करेंगी और अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा का विस्तार करेंगे।

श्रम संहिता से संबंधित चिंताएँ

- कर्मचारियों के हितों के विरुद्ध: संहिता औद्योगिक प्रतिष्ठानों को अपने कर्मचारियों को अपनी इच्छा से काम पर रखने और उनकी छंटनी की स्वतंत्रता प्रदान करती है।
  - यह कदम कंपनियों को श्रमिकों के लिये मनमाने ढंग से सेवा की स्थितियों को पेश करने में सक्षम कर सकता है।
- राज्यों को छूट का अधिकार: राज्यों को श्रम अधिकारों के उल्लंघन में कानूनी छूट देने के लिये एक स्वतंत्र अधिकार दिया गया है। हालाँकि केंद्रीय श्रम मंत्री ने कहा है कि श्रम मुद्दा संविधान की समवर्ती सूची में है और इसलिये राज्यों को उनकी इच्छानुसार बदलाव करने की छूट दी गई है।
- औद्योगिक शांति प्रभावित: औद्योगिक संबंध संहिता का प्रस्ताव है कि कारखानों में श्रमिकों को कम-से-कम 14 दिन पहले कर्मचारियों को नोटिस देना होगा यदि वे हड़ताल पर जाना चाहते हैं।
  - हालाँकि इससे पहले श्रम पर स्थायी समिति ने सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं जैसे पानी, बिजली, प्राकृतिक गैस, टेलीफोन और अन्य आवश्यक सेवाओं से परे हड़ताल के लिये आवश्यक सूचना अवधि के विस्तार के विरुद्ध सिफारिश की थी।
  - इसके अलावा भारतीय मजदूर संघ ने भी संहिता का विरोध किया और इसे ट्रेड यूनियनों की भूमिका को कम करने के लिये एक स्पष्ट प्रयास बताया है।

निष्कर्ष

- आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण यह देखता है कि गैर-कृषि क्षेत्र में 71% नियमित वेतन/वेतनभोगी श्रमिकों के पास लिखित अनुबंध नहीं था और 50% सामाजिक सुरक्षा कवर के बिना थे। अनुपालन को सरल बनाने के नए कानूनों से कार्यबल औपचारिकता के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये।
- नई श्रम संहिता बढ़ते कार्यबल को पूरा करने और उनकी बढ़ती आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये अच्छी गुणवत्ता वाले रोज़गार पैदा करने की गति बढ़ाने तथा कृषि से श्रम के प्रवास को दूर करने में मदद करेगी। इस तरह भारत पूरी तरह से अपने निहित श्रम और कौशल लागत को भुनाने में सक्षम हो सकता है और विशेष रूप से COVID-19 के बाद तेज़ी से आर्थिक सुधार कर सकता है।

मुख्य परीक्षा प्रश्न : हाल ही में पारित श्रम संहिताएँ भारत में श्रम सशक्तीकरण पर कितना परिवर्तनकारी प्रभाव डाल सकती हैं, चर्चा करें। साथ ही संहिताओं से जुड़ी चुनौतियों पर भी चर्चा करें।

NGO की भूमिका

संदर्भ

हाल ही में संसद ने विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, [Foregin Currency Regulation Act- (FCRA), 2010], 2010 में कुछ संशोधन प्रस्तावित किये हैं। सरकार के अनुसार इन संशोधनों का उद्देश्य गैर-सरकारी संगठनों (Non-Governmental Organisations- NGO) के कामकाज में पारदर्शिता लाना है। हालाँकि इन नए नियमों ने गैर-सरकारी संगठनों, शैक्षिक और अनुसंधान संस्थानों के लिये प्रतिकूल स्थितियाँ पैदा कर दी हैं, जिनके पास विदेशी संस्थाओं के साथ वित्तीय भागीदारी है। इस प्रकार कई नागरिक समाज समूह इन संशोधनों पर विशेष रूप से ऐसे समय में सवाल उठा रहे हैं जब देश को COVID-19 महामारी के हानिकारक प्रभावों सहित कई चुनौतियों से निपटने के लिये मज़बूत नागरिक समाज संगठनों और नेटवर्क की आवश्यकता है। इस प्रकार भारत के विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को देखते हुए गैर-सरकारी संगठनों की स्वायत्तता और गैर-कानूनी गतिविधियों में लिप्त गैर-सरकारी संगठनों की जाँच करने के लिये सरकार की अनिवार्यता के बीच संतुलन बनाने की आवश्यकता है।

कानून में प्रमुख संशोधन

- अब कुल विदेशी चंदे में से 20% से अधिक को गैर-सरकारी संगठनों द्वारा प्रशासनिक व्यय नहीं करने का प्रावधान किया गया है।
- नए संशोधन के अंतर्गत NGO को विदेशी अनुदान के संबंध में दिल्ली शाखा में भारतीय स्टेट बैंक में खाता होना आवश्यक है।
- यह FCRA के अंतर्गत प्राप्त अनुदानों को किसी अन्य संगठन को हस्तांतरित करने पर भी प्रतिबंध लगाता है।
- यह एक गैर सरकारी संगठन के FCRA प्रमाण पत्र को रद्द करने के लिये गृह मंत्रालय को व्यापक अधिकार देता है।

इन संशोधनों से संबंधित चिंताएँ

- नए FCRA प्रावधान विशेष रूप से वह है जो गैर-सरकारी संगठनों को अधीन करने से रोकता है जिससे देश के विकास क्षेत्र में सहयोग की भावना को खतरा है।
  - यह विदेशी वित्त पोषण और विकास सहायता के प्रवाह को कमज़ोर करेगा।
- इसके अलावा प्रस्तावित परिवर्तन पर्यावरणवाद, मानवाधिकार और नागरिक स्वतंत्रता के आदर्शों के अनुरूप नहीं हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में अधिकांश विदेशी योगदान प्राप्त करते हैं। ये आदर्श भारत की सॉफ्ट पॉवर के महत्त्वपूर्ण स्तंभ हैं।
- इन मुद्दों के कारण अंतर्राष्ट्रीय आयोग ने कहा है कि नया कानून अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों के साथ असंगत है और अधिकारों के लिये भारत के अपने संवैधानिक प्रावधान हैं।

भारतीय लोकतंत्र में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

भारत में लगभग 3.4 मिलियन गैर-सरकारी संगठन हैं जो हाशिए पर और वंचित समुदायों के लिये आपदा राहत से लेकर समर्थन तक के विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। भारत जैसे विकासशील देश में भूमिका और ज़िम्मेदारियाँ बहुत अधिक हैं जिन्हें निम्नानुसार सूचीबद्ध किया जा सकता है:

- अंतर को भरना: गैर सरकारी संगठन सरकार के कार्यक्रमों में खामियों को दूर करने का प्रयास करते हैं और उन लोगों तक पहुँचते हैं जो अक्सर राज्य की परियोजनाओं से अछूते रह जाते हैं। उदाहरण के लिये- COVID-19 संकट में प्रवासी श्रमिकों को सहायता प्रदान करना।
  - इसके अलावा वे मानव और श्रम अधिकारों, लैंगिक मुद्दों, स्वास्थ्य देखभाल, पर्यावरण, शिक्षा, कानूनी सहायता और यहाँ तक कि अनुसंधान से संबंधित विविध गतिविधियों में लगे हुए हैं।
- अधिकार संबंधी भूमिका: समाज में कोई भी बदलाव लाने के लिये सामुदायिक-स्तर के संगठन और स्वयं सहायता समूह महत्त्वपूर्ण हैं।
  - अतीत में ऐसे ज़मीनी स्तर के संगठनों को बड़ी NGO और अनुसंधान एजेंसियों के साथ सहयोग से सक्षम किया है जिनकी विदेशी फंडिंग तक पहुँच है।

- दबाव समूह के रूप में कार्य करना: ऐसे राजनीतिक गैर सरकारी संगठन हैं जो सरकार की नीतियों और कार्यों के विरुद्ध जनता की राय जुटाते हैं।
  - इस तरह के NGO जनता को शिक्षित करने और सार्वजनिक नीति पर दबाव बनाने में सक्षम हैं, वे लोकतंत्र में महत्त्वपूर्ण दबाव समूहों के रूप में कार्य करते हैं।
  - वे गुणवत्ता सेवा की मांग के लिये गरीबों को जुटाते और संगठित करते हैं और ज़मीनी स्तर के सरकारी अधिकारियों के प्रदर्शन पर जवाबदेही के लिये सामुदायिक प्रणाली लागू करते हैं।
- सहभागी शासन में भूमिका: कई नागरिक समाज की पहल ने देश में कुछ पथ-तोड़ने वाले कानूनों में योगदान दिया है जिसमें पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009, वन अधिकार अधिनियम, 2006 और सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 शामिल हैं।
- सामाजिक मध्यस्थ के रूप में कार्य करना: सामाजिक अंतर-मध्यस्थता समाज में परिवर्तन के वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिये प्रचलित सामाजिक परिवेश के भीतर सामाजिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण को बदलने के लिये विभिन्न एजेंटों द्वारा समाज के विभिन्न स्तरों का एक हस्तक्षेप है।

भारतीय संदर्भ में जहाँ लोग अभी भी अंधविश्वास, आस्था, विश्वास और रीति-रिवाज में फंसे हुए हैं, वहाँ NGO उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं और लोगों में जागरूकता पैदा करते हैं।

NGO से संबंधित मुद्दे

- विश्वसनीयता में कमी: पिछले कुछ वर्षों के दौरान कई संगठनों ने मुहिम शुरू की है जो गरीबों की मदद करने के लिये काम करने का दावा करते हैं।
  - एक गैर सरकारी संगठन होने की आड़ में ये NGO अक्सर दानदाताओं से पैसे लेते हैं और मनी लॉन्ड्रिंग गतिविधियों में भी शामिल होते हैं।
  - भारत में हर 400 लोगों के लिये लगभग एक NGO है। हालाँकि प्रत्येक गैर-सरकारी संगठन महत्त्वपूर्ण सामाजिक कल्याण कार्यों में संलग्न नहीं है।
- पारदर्शिता की कमी: भारत के गैर-सरकारी संगठनों की संख्या और इस क्षेत्र में पारदर्शिता और जवाबदेही की कमी स्पष्ट रूप से एक मुद्दा है जिसमें सुधार की आवश्यकता है।
  - इसके अलावा गैर-सरकारी संगठनों के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों को नज़रअंदाज़ किया जा रहा है। अतीत में कई गैर-सरकारी संगठनों को धन की हेराफेरी में लिप्त पाए जाने के बाद ब्लैकलिस्ट किया गया था।
- विकास संबंधी गतिविधियाँ: भारत के इंटेलिजेंस ब्यूरो की एक रिपोर्ट ने ग्रीनपीस, कॉर्डेड, एमनेस्टी, और एक्शन एड जैसे NGOs पर भारत के सकल घरेलू उत्पाद को 2-3% प्रतिवर्ष कम करने का आरोप लगाया।

निष्कर्ष

गैर-सरकारी संगठनों के लिये यह महत्त्वपूर्ण है कि वे न केवल अपने काम बल्कि अपनी वित्तीय स्थिति में भी उच्च स्तर की पारदर्शिता हासिल करें और उसे बनाए रखें। गैर सरकारी संगठनों को अपनी आय और व्यय को सार्वजनिक जांच के लिये खुला रखने की आवश्यकता है। हालाँकि किसी NGO की विश्वसनीयता का निर्धारण धन के स्रोत, देशी या विदेशी के पैमाना (Touchstone) के विरुद्ध नहीं किया जा सकता है। साथ ही सरकार को यह महसूस करना चाहिये कि राष्ट्रीय सीमाओं के पार विचारों और संसाधनों का सहज आदान-प्रदान वैश्विक समुदाय के कामकाज के लिये आवश्यक है और इसे तब तक हतोत्साहित नहीं किया जाना चाहिये जब तक कि यह मानने का कारण न हो कि धन का उपयोग अवैध गतिविधियों में सहायता के लिये किया जा रहा है।

मुख्य परीक्षा प्रश्न: भारतीय लोकतंत्र में गैर-सरकारी संगठनों (Non-Governmental Organisations- NGO) की भूमिका और NGO पर विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 2010 के अंतर्गत नए विनियमन के प्रभावों की चर्चा करें।

नोट :

संसदीय समिति प्रणाली

संदर्भ

प्रतिनिधित्व, अनुक्रियता और जवाबदेही संसदीय लोकतंत्र के मूलभूत आधार हैं। भारत में संसद के मुख्यत: दो कार्य होते हैं, पहला कानून बनाना और दूसरा सरकार की कार्यात्मक शाखा का निरीक्षण करना। संसद के इन्ही कार्यों को प्रभावी ढंग से संपन्न करने के लिये संसदीय समितियों को एक माध्यम के तौर पर प्रयोग किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय संसद ने संसदीय समिति प्रणाली में तेज़ी से सुधार किया है। हालाँकि डेटा और कई अन्य उदाहरणों से पता चलता है कि पिछले कुछ वर्षों में समिति प्रणाली का क्रमिक सीमांकन हुआ है। इसलिये, संसद की प्राथमिक भूमिका में बहस, चर्चा और विचार-विमर्श को बनाए रखने के लिये संसदीय समिति प्रणाली में आवश्यक सुधार करने की आवश्यकता है।

संसदीय समिति की उत्पत्ति और प्रकार

- उत्पत्ति: जैसा कि भारतीय संसदीय लोकतंत्र की कई अन्य प्रथाओं के मामले की तरह संसदीय समितियों की उत्पत्ति ब्रिटिश संसद से हुई है।
  - स्वतंत्र भारत में पहली लोक लेखा समिति का गठन अप्रैल 1950 में किया गया था।
- संवैधानिक प्रावधान: संसदीय समितियाँ अनुच्छेद 105 (संसद सदस्यों के विशेषाधिकारों पर) और अनुच्छेद 118 (संसद के प्राधिकार पर इसकी प्रक्रिया और व्यवसाय के संचालन के नियमन के लिये नियम बनाने के लिये) से अपना अधिकार प्राप्त करती हैं।
- प्रकार: अधिकांश समितियाँ स्थाई' हैं क्योंकि उनका अस्तित्व निर्बाध है और उन्हें आमतौर पर वार्षिक आधार पर पुनर्गठित किया जाता है उदाहरणत: के लिये कुछ चुनिंदा समितियाँ हैं जो किसी विशेष विधेयक पर विचार करने के लिये एक विशिष्ट उद्देश्य के लिये बनाई जाती हैं।
  - संसद में गठित की गईं विभाग-संबंधी स्थायी समितियाँ (Departmentally-related Standing Committees-DRSC) वर्ष 1993 में 17 थी जो बाद में बढ़कर 24 हो गईं।
  - इन समितियों ने मुख्यत: सदनों में राजनीतिक दलों की ताकत के अनुपात में दोनों सदनों के सदस्यों को शामिल किया।

व्यवसाय का आबंटन: एक संसदीय समिति के मामले को संदर्भित करने के लिये अध्यक्ष (Chair) अपने विवेक का उपयोग करता है लेकिन यह आमतौर पर सदन में दलों के नेताओं के परामर्श से किया जाता है।

  - सरकारी विभागों द्वारा अपनी स्वयं की स्थाई समितियों का गठन शुरू करने के बाद वर्ष 1989 में समितियों को नियमित रूप से विधेयकों का उल्लेख करने की प्रक्रिया शुरू हुई।
  - इससे पहले कि घरों की चुनिंदा समितियों या संयुक्त समितियों को केवल कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण विधेयकों की विस्तार से जांच करने के लिये स्थापित किया गया था।
- वित्त में कुछ महत्त्वपूर्ण संसदीय समितियाँ: वित्तीय नियंत्रण कार्यकारी पर संसद के अधिकार के लिये एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है इसलिये वित्त समितियों को विशेष रूप से शक्तिशाली माना जाता है।
  - तीन वित्तीय समितियाँ लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति और सार्वजनिक उपक्रम समिति हैं।

संसदीय समिति प्रणाली का महत्त्व

- अंतर-मंत्रालयी समन्वय: इन्हें अंतर-संबंधित विभागों और मंत्रालयों के एक सेट में संसद का रूप माना जाता है।
  - उन्हें संबंधित मंत्रालयों/विभागों के अनुदानों की माँगों को देखने से संबंधित विधेयकों की जाँच करने, उनकी वार्षिक रिपोर्टों पर विचार करने और उनकी दीर्घकालीन योजनाओं और संसद को रिपोर्ट करने का कार्य सौंपा जाता है।
- विस्तृत जांच के लिये साधन: समिति की रिपोर्टें आमतौर पर विस्तृत होती हैं और शासन से संबंधित मामलों की प्रामाणिक जानकारी प्रदान करती हैं।

  समितियों को संदर्भित विधेयकों को महत्त्वपूर्ण मूल्यवर्द्धन के साथ सदन में वापस कर दिया जाता है।
  - स्थायी समितियों के अलावा संसद के सदनों ने विशिष्ट विषयों पर पूछताछ करने और रिपोर्ट करने के लिये तदर्थ समितियों का गठन किया, जिन्हें किसी विधेयक का बारीकी से अध्ययन करने और सदन को वापस रिपोर्ट करने का कार्य सौंपा गया है।
  - इसके अलावा अपने जनादेश के निर्वहन में वे विशेषज्ञ की सलाह ले सकते हैं और जनता की राय का पालन कर सकते हैं।

- मिनी संसद के रूप में कार्य करना: ये समितियाँ दोनों सदनों के राजनीतिक दलों के सांसदों की छोटी इकाइयाँ हैं और वे पूरे वर्ष कार्य करती हैं।
    - इसके अलावा संसदीय समितियाँ लोकलुभावन मांगों से बाध्य नहीं हैं जो आमतौर पर संसद के काम में बाधा के रूप में कार्य करती हैं।

एक क्रमिक सीमांकन

- सार्वजनिक महत्व के मामलों में उपेक्षित: हाल के वर्षों में संसद के कुछ सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जैसे अनुच्छेद 370 जो जम्मू-कश्मीर की विशेष स्थिति को निरस्त करते हैं और राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों में विभाजित करते हैं, किसी भी सदन की समिति द्वारा संसाधित नहीं किये गए थे।
    - हाल ही में कृषि उपज से संबंधित तीन विधेयकों और तीन श्रम विधेयकों के विरुद्ध तीव्र विरोध हो रहा है जो निश्चित रूप से सदनों की चुनिंदा समितियों द्वारा जांच के योग्य हैं जिन्हें बहुमत का उपयोग करके ही सरकार द्वारा पारित किया गया था।
- अन्य कमियाँ: समितियों के कामकाज को प्रभावित करने वाले अन्य मुद्दों पर बैठकों में सांसदों की कम उपस्थिति होती हैं एक समिति के अंतर्गत बहुत सारे मंत्रालय, सांसदों को समितियों में नामित करते समय अधिकांश राजनीतिक दलों द्वारा मानदंडों का पालन नहीं किया गया।

आगे की राह

- नई समितियों की स्थापना: अर्थव्यवस्था और तकनीकी प्रगति के मामलों में बढ़ती जटिलता को देखते हुए नई संसदीय समितियों की स्थापना की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये:
    - राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर स्थाई समिति सलाहकार विशेषज्ञता, डेटा एकत्र करने और अनुसंधान सुविधाओं के लिये संसाधनों के साथ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण प्रदान करना।
    - संसद में पेश होने से पहले संविधान संशोधन विधेयकों की जांच के लिये स्थायी समिति का गठन।
    - विधायी योजना की देखरेख और समन्वय के लिये विधान पर स्थायी समिति।
- अनिवार्य चर्चा: सभी समितियों की प्रमुख रिपोर्टों पर संसद में विशेष रूप से उन मामलों पर चर्चा की जानी चाहिये जहाँ एक समिति और सरकार के बीच असहमति है।
    - PAC की सिफारिशों को अधिक वरीयता के अनुरूप होना चाहिये और उन्हें "वित्तीय मामलों में राष्ट्र का विवेक रखने वाले" के रूप में माना जाना चाहिये।
- आवधिक समीक्षा: संविधान के कामकाज की समीक्षा करने के लिये राष्ट्रीय आयोग (National Commission to Review the Working of the Constitution- NCRWC) के अनुसार, DRSC की समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिये ताकि जिन समितियों ने अपनी उपयोगिता को रेखांकित किया है उन्हें नए के साथ बदला जा सके।

व्यापार के संशोधित नियम: इनके अलावा लोक सभा और राज्यसभा दोनों में प्रक्रिया के नियमों में संशोधन करने की आवश्यकता है ताकि सभी प्रमुख विधेयकों को DRSC को संदर्भित किया जाए ताकि DRSC समिति में दूसरे पठन चरण को अंतिम रूप दे सकें।

निष्कर्ष

संसद की प्राथमिक भूमिका विचार-विमर्श, चर्चा और किसी भी लोकतांत्रिक संस्था की पहचान पर पुनर्विचार है। हालाँकि संसद उन मामलों पर विचार-विमर्श करती है जो जटिल हैं और इसलिये ऐसे मामलों को बेहतर तरीके से समझने के लिये तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता है। इस प्रकार संसदीय समितियाँ एक मंच प्रदान करके इसकी सहायता करती हैं जहाँ सदस्य अपने अध्ययन के दौरान डोमेन विशेषज्ञों और सरकारी अधिकारियों के साथ संलग्न हो सकते हैं। संसदीय लोकतंत्र की बेहतरी के लिये उन्हें दरकिनार करने के बजाय संसदीय समितियों को मज़बूत करने की आवश्यकता है।

मुख्य परीक्षा प्रश्न: संसदीय समितियों से आप क्या समझते हैं? किस प्रकार ये समितियाँ हमारी संसद की कार्य क्षमता बढाती हैं व जवाबदेहिता को सुनिश्चित करती हैं?

आर्थिक घटनाक्रम

किसान विरोध

संदर्भ

हाल ही में विशेष रूप से पंजाब और हरियाणा राज्यों के किसानों द्वारा तीन कृषि विधेयकों के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन किया गया है, जो जून 2020 में जारी किये गए अध्यादेशों को बदलना चाहते हैं। ये विधेयक कृषि वस्तुओं के व्यापार, मूल्य आश्वासन, अनुबंध सहित कृषि सेवाओं और आवश्यक वस्तुओं के लिये स्टॉक सीमा में कृषि अर्थव्यवस्था के कुछ प्रमुख पहलुओं में बदलाव लाने की परिकल्पना करते हैं। इन विधेयकों में कृषि विपणन प्रणाली में बहुत आवश्यक सुधार लाने की मांग की गई है जैसे कि कृषि उपज के निजी स्टॉक पर प्रतिबंध को हटाना या बिचौलियों से मुक्त व्यापारिक क्षेत्र बनाना। हालाँकि किसान आशंकित हैं कि इन विधेयकों द्वारा समर्थित मुक्त बाज़ार की अवधारणा न्यूनतम समर्थन मूल्य (Minimum Support Price- MSP) प्रणाली को कमज़ोर कर सकती है और किसानों को बाज़ार की शक्तियों के प्रति संवेदनशील बना सकती है।

तीन कृषि विधेयक जो विवादित हैं:

- किसान उपज व्यापार एवं वाणिज्य (संवर्द्धन और सुविधा) विधेयक, 2020।
- मूल्य आश्वासन और कृषि सेवाओं पर किसान (सशक्तीकरण और संरक्षण) समझौता विधेयक, 2020।
- आवश्यक वस्तु (संशोधन) विधेयक, 2020।

विधेयकों के उद्देश्य

- इन विधेयकों का उद्देश्य कृषि उपज बाज़ार समितियों (Agricultural Produce Market Committees- APMC) की सीमाओं से बाहर बिचौलियों और सरकारी करों से मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाकर कृषि व्यापार में सरकार के हस्तक्षेप को दूर करना है।
  - यह किसानों को बिचौलियों के माध्यम से और अनिवार्य शुल्क जैसे लेवी का भुगतान किये बिना इन नए क्षेत्रों में सीधे अपनी उपज बेचने का विकल्प देगा।
- ये विधेयक अंतर्राज्यीय व्यापार पर स्टॉक होल्डिंग सीमा के साथ-साथ प्रतिबंधों को हटाने और अनुबंध खेती के लिये एक ढाँचा बनाने की मांग करते हैं।
- साथ ही ये विधेयक बड़े पैमाने पर किसान उत्पादक संगठनों (Farmer Producer Organisations- FPO) के निर्माण को बढ़ावा देते हैं और अनुबंध खेती के लिये एक किसान अनुकूल वातावरण बनाने में मदद करेंगे जहाँ छोटे किसान भी लाभ उठा सकते हैं।
- ये विधेयक निजी क्षेत्र को भंडारण, ग्रेडिंग और अन्य मार्केटिंग बुनियादी ढांचे में निवेश करने में सक्षम कर सकते हैं।
- इन विधेयकों के संयुक्त प्रभाव से कृषि उपज के लिये 'वन नेशन, वन मार्केट' बनाने में मदद मिलेगी।

किसानों और विपक्ष द्वारा उठाए गए मुद्दे

- संघीय दृष्टिकोण: किसान उपज व्यापार एवं वाणिज्य (संवर्द्धन और सुविधा) विधेयक, 2020 APMC क्षेत्राधिकार के बाहर नामित व्यापार क्षेत्रों में अप्रभावित वाणिज्य के लिये प्रावधान करता है।
  - इसके अलावा यह विधेयक केंद्र सरकार को इस कानून के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये राज्यों को आदेश जारी करने का अधिकार देता है।
  - हालाँकि व्यापार और कृषि के मामलों को राज्य सूची के विषयों का हिस्सा होने के कारण राज्यों में नाराज़गी है।
- परामर्श की कमी: पहले अध्यादेश मार्ग और अब उचित परामर्श के बिना विधेयकों को पारित करने का जल्दबाजी का प्रयास किसानों सहित विभिन्न हितधारकों के बीच अविश्वास पैदा करता है।
  - इसके अलावा APMC क्षेत्र के बाहर व्यापार क्षेत्रों को अनुमति देने से किसान आशंकित हो गए हैं कि नई प्रणाली से न्यूनतम समर्थन

मूल्य प्रणाली अंततः बाहर निकल जाएगी।

- गैर-APMC मंडियों में किसी भी विनियमन की अनुपस्थिति: किसानों द्वारा उठाया गया एक और मुद्दा यह है कि प्रस्तावित विधेयक किसानों के हितों की कीमत पर कॉर्पोरेट हितों को वरीयता देते हैं।
  - गैर-APMC मंडियों में किसी भी विनियमन के अभाव में किसानों को कॉरपोरेट्स से निपटना मुश्किल हो सकता है क्योंकि वे पूरी तरह से लाभ की मांग के उद्देश्य से काम करते हैं।
- गैर-अनुकूल बाज़ार की स्थिति: खुदरा मूल्य दर उच्च बनी हुई हैं जबकि थोक मूल्य सूचकांक (Wholesale Price Index-WPI) के आंकड़ों से अधिकांश कृषि उपज के लिये फार्म गेट की कीमतों में गिरावट का संकेत मिलता है।
  - बढ़ती इनपुट लागत के साथ किसानों को मुक्त बाज़ार आधारित ढाँचा उपलब्ध नहीं है जो उन्हें पारिश्रमिक मूल्य प्रदान करता है।
  - इन आशंकाओं से बिहार जैसे राज्यों के अनुभव को बल मिलता है, जिसने वर्ष 2006 में APMC को समाप्त कर दिया था। मंडियों के उन्मूलन के बाद बिहार में अधिकांश फसलों के लिये किसानों को MSP की तुलना में औसतन कम कीमत प्राप्त हुई।

आगे की राह

- प्रतिस्पर्द्धा को मज़बूत करने के लिये कृषि अवसंरचना में सुधार: सरकार को बड़े पैमाने पर APMC बाज़ार प्रणाली के विस्तार के लिये फंड देना चाहिये , व्यापार कार्टेल को हटाने के लिये प्रयास करना चाहिये और किसानों को अच्छी सड़कें, पैमाने की रसद और वास्तविक समय की जानकारी प्रदान करनी चाहिये।
- राज्य किसान आयोगों को सशक्त बनाना: भारी केंद्रीकरण का विरोध करने के बजाय राष्ट्रीय किसान आयोग द्वारा अनुशंसित राज्य किसान आयोगों के माध्यम से किसानों को सशक्त बनाने पर जोर दिया जाना चाहिये ताकि मुद्दों पर सरकार की तीव्र प्रतिक्रिया आए।
- सर्वसम्मति बनाना: केंद्र को किसानों सहित विधेयकों का विरोध करने वालों तक पहुँचना चाहिये उन्हें सुधार की आवश्यकता समझानी चाहिये और उन्हें बोर्ड पर लाना चाहिये।

निष्कर्ष

मज़बूत संस्थागत व्यवस्था के बिना मुक्त बाज़ार से लाखों असंगठित छोटे किसानों को लाखों का नुकसान हो सकता है, जो उल्लेखनीय रूप से उत्पादक हैं और जिन्होंने महामारी के दौरान भी अर्थव्यवस्था को सहारा दिया है।

The Vision

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम

संयुक्त राष्ट्र सुधार और भारत

संदर्भ

संयुक्त राष्ट्र (United Nations- UN) की स्थापना 75 वर्ष पहले की गई थी, जिसका मुख्य उद्देश्य विश्व शांति और सुरक्षा को बनाए रखना था। यह देशों की विघटन प्रक्रिया तथा एक और विश्व युद्ध को रोकने में सफल रहा है। हालाँकि 21वीं सदी का विश्व उस 20वीं सदी से बहुत अलग है और कई नई समस्याओं और वास्तविकताओं का सामना कर रहा है। वर्तमान मानवीय और आर्थिक नुकसान COVID-19 महामारी से जुड़े हुए हैं जिसकी तुलना प्रमुख युद्धों से की जाती है और यह बेरोज़गारी 1929 की महामंदी (Great Depression 1929) के बाद से किसी भी समय से बदतर है। इसने बहुपक्षीय संयुक्त राष्ट्र प्रणाली से संबंधित चुनौतियों पर प्रकाश डाला है। इसके अलावा इस स्थिति में ट्रांस-नेशनल (उदाहरण के लिये- आतंकवाद, सामूहिक विनाश, महामारी, जलवायु संकट, साइबर सुरक्षा और गरीबी के हथियारों के प्रसार) चुनौतियों की संख्या में वृद्धि की एक सामान्य प्रवृत्ति रही है। संयुक्त राष्ट्र को बहुपक्षीय विश्व व्यवस्था का प्रतीक होने के कारण वैश्विक मुद्दों से निपटने की अधिक आवश्यकता है। इसलिये संयुक्त राष्ट्र में सुधार एक बहुपक्षीय संगठन के रूप में संयुक्त राष्ट्र की प्रभावशीलता को मज़बूत करने के लिये आवश्यक हैं।

वर्तमान समय में बहुपक्षवाद के विरुद्ध चुनौतियाँ

- नए शीत युद्ध का उदय: एक ओर अमेरिका और चीन के बीच संघर्ष और दूसरी ओर चीन तथा रूस के बीच पश्चिम-पूर्व संघर्ष एक नई वास्तविकता बन गई है।
- विभाजित पश्चिम: युद्ध के बाद के गठजोड़ों के बावजूद कई वैश्विक मुद्दों पर अमेरिका और उसके यूरोपीय भागीदारों के बीच मतभेद बढ़ रहे हैं।
  - ईरान परमाणु समझौते पर अमेरिका और अन्य शक्तियों के बीच कुछ अंतर बहुत स्पष्ट दिखाई देते हैं।
  - इसके अलावा युद्ध के बाद के बहुपक्षवाद और शीत युद्ध के बाद के विश्ववाद की अस्वीकृति ट्रंप की "अमेरिका फर्स्ट" विदेश नीति के केंद्र में है।
- संयुक्त राष्ट्र की अप्रभाविता: संयुक्त राष्ट्र कोरोनोवायरस के वैश्विक संकट पर प्रभावी ढंग से प्रतिक्रिया देने में असमर्थ रहा है।
  - संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में चीन ने संकट की उत्पत्ति और स्रोतों पर एक गंभीर चर्चा को अवरुद्ध कर दिया। जबकि अमेरिका विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा चीन का समर्थन करने के आरोपों को लगाते हुए इससे बाहर हो गया।

संयुक्त राष्ट्र सुधार के क्षेत्र

- UNSC की कमी: संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (UNSC) अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति और सुरक्षा बनाए रखने की प्राथमिक ज़िम्मेदारी के साथ संयुक्त राष्ट्र की मुख्य कार्यकारी संस्था है।
  - हालाँकि UNSC के पाँच स्थायी सदस्यों द्वारा वीटो शक्तियों का उपयोग सशस्त्र संघर्ष के पीड़ितों के लिये विनाशकारी परिणामों की परवाह किये बिना उनके भू-राजनीतिक हितों को किनारे करने हेतु एक उपकरण के रूप में किया जाता है। जैसा कि सीरिया, इराक आदि में देखा जा सकता है।
  - इसके अलावा यह आज की सैन्य और आर्थिक शक्ति के वितरण को प्रतिबिंबित नहीं करता है और न ही एक भौगोलिक संतुलन को। इस प्रकार 15 सदस्यीय सुरक्षा परिषद की संरचना अधिक लोकतांत्रिक और प्रतिनिधि होनी चाहिये।
  - भारत, जर्मनी, ब्राज़ील और जापान ने मिलकर जी-4 नामक समूह बनाया है। ये देश संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के लिये एक-दूसरे का समर्थन करते हैं।
- महासभा सुधार: संयुक्त राष्ट्र महासभा (UN General Assembly- UNGA) केवल गैर-बाध्यकारी सिफारिशें कर सकती है, जो संयुक्त राष्ट्र के अप्रभाव का एक और कारण तथा संयुक्त राष्ट्र सुधार का एक और महत्त्वपूर्ण मुद्दा है।

- संयुक्त राष्ट्र निकायों की आर्थिक और सामाजिक परिषद ने आलोचना की है, क्योंकि यह IMF और विश्व बैंक जैसी संस्थाओं के प्रभाव की तुलना में कम प्रभावी हो गया है, जिनमें लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं, पारदर्शिता और जवाबदेही का अभाव है।
- संयुक्त राष्ट्र का वित्तीय संकट: यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र के पास करने के लिये बहुत कुछ है लेकिन इसके पास बहुत कम पैसा है, क्योंकि यह कई सदस्यों की अनिच्छा के कारण समय पर उनके योगदान का भुगतान करने के लिये एक स्थायी वित्तीय संकट में है।
    - जब तक संयुक्त राष्ट्र के बजट में कमी बनी हुई है, तब तक यह प्रभावी नहीं हो सकता है।
- संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों में संरचनात्मक कमी: हालाँकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अर्थशास्त्र और मानव अधिकारों को प्रभावित करने वाले अंतर्राष्ट्रीय कानून संधियों की बड़ी संख्या बहुत प्रभावी साबित हुई है, बल के उपयोग को प्रतिबंधित करने वाले कानून कम हुए हैं।
    - इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों के लिये संरचनात्मक सुधार करने की आवश्यकता है।

संयुक्त राष्ट्र प्रणाली और आगे की राह में भारत की भूमिका

UNSC के अव्यवस्थित होने के बावजूद भारत ने एक नए अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक आदेश के लिये विघटन और निरस्त्रीकरण से स्वयं का एक बहुपक्षीय एजेंडा विकसित किया है और इसके लिये काफी राजनीतिक समर्थन जुटाया है। यह वर्तमान में वैश्विक आकृति को आकार देने की संभावनाओं को रेखांकित करता है।

- UNSC में सुधार: जैसा कि संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव ने उल्लेख किया है कि "सुरक्षा परिषद के सुधार के बिना संयुक्त राष्ट्र का कोई भी सुधार पूरा नहीं होगा"। इसलिये UNSC के विस्तार के साथ ही न्यायसंगत प्रतिनिधित्व भी वांछित सुधार की परिकल्पना करता है।
    - हालाँकि, यह संयुक्त राष्ट्र सुधारों का सबसे चुनौतीपूर्ण पहलू होगा क्योंकि आमतौर पर पांच स्थायी सदस्यों द्वारा किसी भी महत्वपूर्ण परिवर्तन को रोकने के लिये अपनी शक्ति का उपयोग करते हुए विरोध किया जाता है।
- संयुक्त राष्ट्र सुधारों के लिये अन्य बहुपक्षीय मंचों के साथ जुड़ाव: संयुक्त राष्ट्र के वित्त में सुधार के संभावित समाधान में एक 'आरक्षित निधि' या यहाँ तक कि एक 'विश्व कर' की स्थापना कर सकते हैं।
- राष्ट्रीय हित और बहुपक्षवाद को संतुलित करना: खासकर ऐसे समय में जब चीन ने सीमा पर आक्रामक मुद्रा अपनाई है, भारत के वर्तमान बहुपक्षवाद का मुख्य उद्देश्य अपनी क्षेत्रीय अखंडता सुनिश्चित करना होना चाहिये।
    - यहाँ भारत, भारत के हितों की सेवा के लिये बहुपक्षवाद का लाभ उठा सकता है। जैसे कि क्वाड देशों के साथ गठबंधन करना या भारत में सीमा पार आतंकवाद को रोकने के लिये पाकिस्तान पर दबाव बनाने के लिये FATF जैसे तंत्र के साथ काम करना।
    - इसके अलावा गुटनिरपेक्ष आंदोलन (Non-Aligned Movement- NAM) में अपनी भूमिका को पुन: स्वीकार करते हुए भारत को अन्य बहुपक्षीय संस्थानों के साथ जुड़ना चाहिये क्योंकि यदि संयुक्त राष्ट्र के बाहर नियम बनाने का काम होता है तो नए नियम बनाना भारत के लिये नुकसानदेह नहीं है।

निष्कर्ष

इतिहास बताता है कि महामारी संकीर्ण स्वार्थ से ऊपर उठने के लिए उत्प्रेरित करती है। इसे वर्ष 1648 में पीस ऑफ वेस्टफेलिया में ब्रेटन वुड्स में सम्मेलनों और वर्ष 1940 में सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में परिलक्षित किया जा सकता है। वर्तमान महामारी संकट के समान है जो विश्व मामलों में विवर्तनिक बदलाव का कारण बन सकती है।

इसके अलावा वैश्विक मुद्दों को देखते हुए आज विश्व को पहले से कहीं अधिक बहुपक्षवाद की आवश्यकता है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र में सुधार करना आवश्यक है। इस संदर्भ में भारत को अपनी प्रणाली में बहुत आवश्यक सुधार लाने के लिये UNSC के अपने गैर-स्थायी सदस्य के अगले दो वर्षों का उपयोग करना चाहिये।

मुख्य परीक्षा प्रश्न: वर्तमान वैश्विक मुद्दों को देखते हुए आज विश्व को पहले से कहीं अधिक बहुपक्षवाद की आवश्यकता है। चर्चा करें।

नोट :

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

जेनेटिक इंजीनियरिंग: लाभ और खतरे

संदर्भ

परमाणु और अंतरिक्ष उड़ान की खोज के साथ जेनेटिक इंजीनियरिंग हाल के इतिहास में सबसे बड़ी सफलताओं में से एक हो सकती है। हालाँकि इसके साथ कई नुकसान और जोखिम जुड़े हुए हैं। हालाँकि प्रकृति चिकित्सा (Nature Medicine) में एक शोध रिपोर्ट Sars-CoV-2 के जेनेटिक इंजीनियरिंग की संभावना का विरोध करती है, लेकिन जेनेटिक इंजीनियरिंग अगली महामारी का कारण हो सकती है। COVID-19 ने प्रदर्शित किया है कि परमाणु मिसाइलों के रूप में जैविक रोगजनकों को कैसे नष्ट किया जा सकता है। इसलिये जैव-आतंकवाद के लिये इस्तेमाल किये जा सकने वाले वायरस विकसित करने के लिये विश्व को जेनेटिक इंजीनियरिंग की संभावनाओं के प्रति सतर्क रहना चाहिये। हालाँकि जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से तकनीकी उन्नति भी इसके विरुद्ध एक मज़बूत रक्षा कवच प्रदान कर सकती है। इसके अलावा जैव-विकास को विकसित करने के लिये विश्व स्तर पर प्रयास होने चाहिये।

जेनेटिक इंजीनियरिंग क्या है?

- जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से वैज्ञानिक वांछनीय जीन को एक पौधे या जीव से दूसरे पौधे या किसी जीव या इसके विपरीत स्थानांतरित करने में सक्षम होते हैं।
- संक्षेप में जेनेटिक इंजीनियरिंग एक ऐसी तकनीक है जिसमें एक विशिष्ट जीन को चुना जा सकता है और प्राप्तकर्ता जीव में प्रत्यारोपित किया जा सकता है।
- जेनेटिक इंजीनियरिंग की प्रक्रिया में गुणसूत्र के एक क्षेत्र को शामिल करना है, जो शरीर की एक निश्चित विशेषता को नियंत्रित करता है। उदाहरण के लिये:
  - एक एंटीवायरल प्रोटीन का उत्पादन करने के लिये इस जीन को पुन: संयोजित किया जा सकता है।
  - एंज़ाइम एंडोन्यूक्लाइज़ का उपयोग DNA अनुक्रम को विभाजित करने के साथ-साथ जीन को गुणसूत्र के बाकी हिस्सों से विभाजित करने के लिये किया जाता है।.
  - इस जीन को हटा दिया जाता है और इसे एक जीवाणु कोशिका (Bacterial Cell) में रखा जा सकता है जहाँ इसे लाइगेज़ का उपयोग करके DNA श्रृंखला में सील किया जा सकता है।
  - जब गुणसूत्र को एक बार फिर से सील कर दिया जाता है तो इस नए एंटीवायरल प्रोटीन को दोहराने के लिये जीवाणु कोशिका को प्रभावी रूप से पुन: संयोजित किया जाता है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग के लाभ

- आनुवांशिक रूप से संशोधित (GM) फसलें: जेनेटिक इंजीनियरिंग ने फसलों को वांछित गुणों के साथ फसलों को अधिक लाभदायक बनाया है।
  - अधिक वांछनीय लक्षणों वाले पौधों (बीटी कॉटन) के उदाहरण हैं जैसे- सूखा प्रतिरोधी पौधे, रोग प्रतिरोधी फसलें, पौधे जो तेजी से बढ़ते हैं और अधिक पोषक तत्वों वाले पौधे।
- आनुवांशिक विकार और अन्य रोगों का उपचार: जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से एक कार्यात्मक जीन के साथ दोषपूर्ण जीन को प्रतिस्थापित करके आनुवंशिक विकार भी तय किये जा सकते हैं।
  - यह मलेरिया और डेंगू बुखार जैसी कुछ बीमारियों के प्रसार को रोकने में मदद करेगा।
- चिकित्सीय क्लोनिंग: यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत प्रत्यारोपण के लिये जैविक अंगों को प्राप्त करने के लिये भ्रूण की कोशिकाओं को क्लोन किया जाता है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग की चुनौतियाँ

हालाँकि जेनेटिक इंजीनियरिंग कई मायनों में फायदेमंद है, लेकिन इसे अप्रिय या नुकसानदेह मानी जाने वाली कुछ घटनाओं में भी माना जा सकता है।

- अपरिवर्तनीय परिवर्तन: प्रकृति एक अत्यंत जटिल परस्पर संबंधित श्रृंखला है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि आनुवांशिक रूप से संशोधित जीन का अज्ञात परिणामों के साथ अपरिवर्तनीय प्रभाव हो सकता है।
  - GMO हानिकारक आनुवंशिक प्रभाव पैदा कर सकता है और जीन एक प्रजाति से दूसरे में स्थानांतरित हो सकता है जो आनुवंशिक रूप से इंजीनियर नहीं है।
  - यह दिखाया गया है कि GMO फसल के पौधे लाभकारी जीन को जंगली आबादी के साथ पारित कर सकते हैं जो इस क्षेत्र में जैव विविधता को प्रभावित कर सकते हैं।
- GMO फसलों से संबंधित स्वास्थ्य मुद्दे: इसके अनजाने प्रभावों पर चिंताएँ हैं जैसे कि भोजन का निर्माण जो एलर्जी की प्रतिक्रिया का कारण बन सकता है।
- जैव नैतिकता: कई नैतिक मुद्दों पर जेनेटिक इंजीनियरिंग की सीमाओं पर उठाए गए प्रमुख प्रश्नों में से एक यह है कि क्या मनुष्य को प्रकृति के नियमों में हेरफेर करने का अधिकार है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग के साथ जुड़े खतरे

यह दिखाया गया है कि GMO फसल के पौधे लाभकारी जीन को जंगली आबादी के साथ साझा कर सकते हैं जो इस क्षेत्र में जैव विविधता को प्रभावित कर सकते हैं।

- प्रौद्योगिकी का तेज़ी से विकास: क्रिस्पर (Clustered Regularly Interspaced Short Palindromic Repeats-CRISPR) जीन एडिटिंग का विकास कुछ वर्ष पहले हुआ था जो प्राकृतिक तंत्र को प्रभावित करता है और यह जीवाणु एक जीनोम से आनुवंशिक जानकारी के टुकड़ों को काटकर कर दूसरे से संबद्ध करता है।
  - CRISPR एकमात्र आनुवंशिक तकनीक नहीं है जिसके बारे में हमें चिंता करने की आवश्यकता है। एक व्यापक क्षेत्र "सिंथेटिक बायोलॉजी" में जेनेटिक इंजीनियरिंग के लिये उपकरण व्यापक रूप से उपलब्ध हैं।
- जैव प्रौद्योगिकी का लोकतांत्रिकरण: चूंकि CRISPR सस्ता और उपयोग में आसान है, इसलिये विश्व भर में हज़ारों वैज्ञानिक CRISPR-आधारित जीन संपादन परियोजनाओं के साथ प्रयोग कर रहे हैं, जिनमें से बहुत कम शोध को नियमों द्वारा सीमित किया गया है।
  - इसके अलावा खतरा न केवल सरकारों से है बल्कि गैर-राज्य अभिनेताओं, अनैतिक (Rogue) वैज्ञानिकों और जैव-हैकर्स के पास समान उपकरण तक पहुँच से है।
  - साथ ही शोधकर्ताओं ने यह प्रदर्शित किया है कि वे चेचक जैसे घातक वायरस को फिर से बना सकते हैं जिसे मिटाने में मानवता को दशकों लग गए।

आगे की राह

जैसा कि इन प्रौद्योगिकियों के वैश्विक प्रसार को रोकने के लिये बहुत देर हो चुकी है। अब एकमात्र उपाय इन प्रौद्योगिकियों के अच्छे पक्ष में तेज़ी लाना और बचाव करना है। इस संदर्भ में:

- कृत्रिम बुद्धिमत्ता और बिग डेटा का उपयोग करना: कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence- AI) और जीनोमिक डेटा के साथ वैज्ञानिक DNA और जैविक प्रक्रियाओं के बीच के जटिल संबंधों को समझेंगे और बीमारियों का इलाज कर पाएंगे।
- 3D प्रिंटिंग की तैनाती: 3-डी प्रिंटिंग हमारे DNA के अनुरूप होम-मेडिसिन, टिश्यू और बैक्टीरिया को विकसित करने में मदद कर सकती है और हमें स्वस्थ रख सकती है।
- जीनोमिक डेटा का जमाव: मानव और अन्य प्रजातियों के जीनोमिक ब्लूप्रिंट विकसित करने की आवश्यकता है यह जानकारी COVID-19 जैसी महामारी से बचाव और टीके विकसित करने में काफी मदद कर सकती है।

नोट :

निष्कर्ष

जीनोमिक्स, सिंथेटिक बायोलॉजी, सेंसर, 3 डी प्रिंटिंग और AI जैसी तकनीकों का विश्लेषण भारत द्वारा डेटा का विश्लेषण करने और उपचार विकसित करने के लिये किया जाना चाहिये। इसके माध्यम से भारत जेनेटिक इंजीनियरिंग में अनुसंधान और नवाचार में विश्व का नेतृत्व कर सकता है और एक ट्रिलियन डॉलर के चिकित्सा उद्योग की नींव रख सकता है।

मुख्य परीक्षा प्रश्न: जेनेटिक इंजीनियरिंग हाल के मानव विकास में सबसे बड़ी सफलताओं में से एक हो सकती है लेकिन इसके साथ कई जोखिम जुड़े हुए हैं।

दृष्टि The Vision

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी

कोयला आधारित ऊर्जा की आवश्यकता

संदर्भ

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने पेरिस समझौते के महत्त्व पर प्रकाश डाला और अपने लक्ष्य को पूरा करने हेतु भारत को वर्ष 2030 तक कोयला उत्पादन रोकने और कार्बन उत्सर्जन को 45% कम करने के लिये कहा था। हालाँकि भारत उन चुनिंदा देशों में से एक है जहाँ कम-से-कम 2°C तापमान अनुरूप जलवायु कार्य योजना है। गौरतलब है कि संयुक्त राष्ट्र महासचिव द्वारा कहा गया कथन UNFCCC के मूल सिद्धांत यानी 'समान परंतु विभेदित उत्तरदायित्वों (Common but differentiated responsibilities- CBDR) के सिद्धांत के अनुरूप नहीं है। CBDR विकसित देशों की जिम्मेदारियों एवं प्रतिबद्धताओं के बीच मुख्य अंतर को दर्शाता है जो विकासशील देशों के पक्ष में दिखाई देता है।

- यदि भारत वर्ष 2020 के बाद कोयला क्षेत्र में कोई नया निवेश नहीं करता है तो संभवत: भारत का औद्योगिकीकरण प्रभावित होगा जिससे भारत की आर्थिक विकास यात्रा पर नकारात्मक असर पड़ेगा। इसलिये भारत को विकास एवं पर्यावरण के बीच संतुलन के सिद्धांतों का पालन करते हुए पेरिस समझौते के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये विकसित देशों के साथ सक्रिय रूप से जुड़ना चाहिये।

भारत का ग्रीन हाउस गैस (GHG) उत्सर्जन:

- G-20 देशों में भारत, सबसे कम प्रति व्यक्ति GHG उत्सर्जन करता है।
- हाल के दशकों में भारत के वार्षिक उत्सर्जन (0.5 टन प्रति व्यक्ति) की त्वरित आर्थिक वृद्धि के बावजूद यह 1.3 टन के वैश्विक औसत से कम है।
- इसके अलावा निरपेक्ष रूप से चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय संघ (European Union-EU) तीन प्रमुख उत्सर्जक हैं जिनका प्रति व्यक्ति उत्सर्जन वैश्विक औसत से अधिक है।

संचयी उत्सर्जन के संदर्भ में, वर्ष 2017 तक भारत का योगदान 1.3 बिलियन आबादी पर केवल 4% था जबकि मात्र 448 मिलियन आबादी वाला यूरोपीय संघ 20% उत्सर्जन के लिये उत्तरदायी था।

  - जो यह दर्शाता है कि वैश्विक मानचित्र में उत्तर में स्थित यूरोपीय देशों ने जीवाश्म ईंधन पर अपनी निर्भरता बनाए रखी है।
- UNFCCC के अनुसार, वर्ष 1990 और वर्ष 2017 के बीच विकसित देशों (रूस एवं पूर्वी यूरोपीय देशों को छोड़कर) ने अपने वार्षिक उत्सर्जन में केवल 1.3% की कमी की है।
- इसके अलावा GHG के प्रमुख उत्पादकों में से एक संयुक्त राज्य अमेरिका ने खुद को पेरिस समझौते से बाहर कर लिया गया है।

कोयला बनाम नवीकरणीय ऊर्जा:

- भारत अभी भी एक विकासशील देश है: विकसित देशों के विपरीत भारत (विकास दायित्वों को देखते हुए) कोयला और अन्य जीवाश्म ईंधन को नवीकरणीय ऊर्जा के साथ पर्याप्त रूप से प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है।
  - नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकियों एवं उनका बड़े पैमाने पर संचालन तथा उत्पादन क्षमता की कमी को देखते हुए कोयला आधारित ऊर्जा संयंत्रों को बंद करने और नवीकरण ऊर्जा में बदलने से भारत की बाहरी स्रोतों से नवीकरणीय प्रौद्योगिकी उपकरणों के आयात एवं आपूर्ति शृंखलाओं पर निर्भरता बढ़ेगी।
- वर्ष 2050 बिजली उत्पादन में 285% की वृद्धि के लिये भारत के पारंपरिक ऊर्जा स्रोत महत्त्वपूर्ण साबित होंगे।
  - अकेले नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत भारत की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम नहीं होंगे। आने वाले समय में भारत की ज़रूरतों को पूरा करने और नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिये आवश्यक है कि वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों को जीवाश्म ईंधन वाले सक्रिय ग्रिडों के साथ एकीकृत किया जाए।
  - इसके अतिरिक्त जीवाश्म ईंधन आधारित ऊर्जा द्वारा संचालित विनिर्माण वृद्धि अपने आप में एक आवश्यकता है।

- विनिर्माण के लिये जीवाश्म-ईंधन की आवश्यकता: चूँकि विनिर्माण उद्योग को बिजली की निर्बाध आपूर्ति की आवश्यकता होती है इसलिये नवीकरणीय ऊर्जा विनिर्माण उद्योग को संचालित नहीं कर सकती है। नवीकरणीय ऊर्जा से उत्पन्न विद्युत आपूर्ति को जीवाश्म ईंधन आधारित ऊर्जा संयंत्र की तरह चालू एवं बंद नहीं किया जा सकता है।
  - इस प्रकार नवीकरणीय ऊर्जा हमेशा विश्वसनीय नहीं होती है और विशेष रूप से चरम माँग के समय नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों से निर्बाध विद्युत आपूर्ति नहीं की जा सकती है।
  - यह (विनिर्माण उद्योग) कोयले सहित पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता की पुष्टि करता है जो नवीकरणीय ऊर्जा की मांग को पूरा करने में विफल होने पर तत्काल विद्युत आपूर्ति कर सकते हैं।
- भारत में कोयला विद्युत आपूर्ति का आधार है: भारत में कोयला विद्युत का प्रमुख स्रोत है। वर्तमान में यह लगभग दो तिहाई विद्युत की आपूर्ति के लिये ज़िम्मेदार है, जिनमें से अधिकांश को ताप विद्युत संयंत्र में संसाधित किया जाता है।
  - केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण (Central Electric Authority) द्वारा प्रकाशित वर्ष 2019 की रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्ष 2030 में भारत में विद्युत उत्पादन का लगभग आधा हिस्सा कोयला आधारित होगा।

आगे की राह

- कोयला आधारित ऊर्जा को पर्यावरण के अधिक अनुकूल बनाना: पूर्ण रूप से नवीकरणीय ऊर्जा को अपनाने के बजाय कोयला आधारित बिजली संयंत्रों को और अधिक पर्यावरण के अनुकूल बनाने के लिये नई तकनीकों (जैसे- कोल गैसीफिकेशन [Coal Gasification), कोल बेनीफिकेशन (Coal Beneficiation) आदि] की एक शृंखला तैयार की जा सकती है।
  - परिणामत: इससे ज्वलनशील कोयले के हानिकारक पर्यावरणीय प्रभावों को प्रभावशाली तरीके से कम किया जा सकेगा।
- विकसित देशों के साथ जुड़ाव: कोपेनहेगन समझौते-Copenhagen Accord {संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (COP-15) 2009 के दौरान स्थापित} के तहत विकसित देशों ने वर्ष 2012 से वर्ष 2020 तक प्रति वर्ष 100 बिलियन डॉलर देने का वादा किया था। इस फंड को हरित जलवायु कोष (Green Climate Fund- GCF) के रूप में जाना जाता है। GCF का उद्देश्य विकासशील और अल्प विकसित देशों (Least Developing Countries) को जलवायु परिवर्तन के मुद्दों से समाधान में सहायता करना है।
  - इस प्रकार भारत जलवायु शमन एवं अनुकूलन हेतु धन और प्रौद्योगिकी जुटाने के लिये विकसित देशों के साथ सक्रिय रूप से जुड़ सकता है।
  - इसी प्रकार भारत, यूरोपीय संघ (European Union) के साथ सक्रिय रूप से सहयोग कर सकता है जिसने वर्ष 2050 तक हरित जलवायु समझौते के अंतर्गत 'कार्बन तटस्थता' प्राप्त करने की परिकल्पना की है।

निष्कर्ष

गौरतलब है कि भारत कार्बन स्थिरता की ओर तेज़ी से बढ़ रहा है। केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण के अनुसार, भारत में वर्ष 2030 तक नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत से 50% विद्युत उत्पादन होगा। जिसमें पवन एवं सौर ऊर्जा की हिस्सेदारी सबसे अधिक होगी। फिर भी भविष्य में परिवर्तन (जीवाश्म ईंधन से नवीकरणीय ऊर्जा में) को सुचारु बनाने और कार्बन-मुक्त ऊर्जा की अपनी दीर्घकालिक उद्देश्य को साकार करने के लिये देश को पारंपरिक स्रोतों के साथ-साथ नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को पूरक बनाना होगा।

प्रश्न: भविष्य में कार्बन-मुक्त ऊर्जा की दीर्घकालिक योजना को साकार करने के लिये भारत को पारंपरिक स्रोतों के साथ नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को पूरक बनाना होगा। चर्चा करें।

मूल्य निर्धारण और कार्बन कर

संदर्भ

चीन के बाद सबसे बड़े ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जक ने घोषणा की कि वह अपने कार्बन उत्सर्जन को वर्ष 2060 से पहले ऑफसेट करने के उपायों के साथ संतुलित करेगा, अमेरिका और भारत कार्रवाई करने की सूची में आगे हैं। अमेरिका, चीन और जापान के साथ भारत कुछ ऐसे देश हैं जो जलवायु प्रभावों से सबसे ज्यादा प्रभावित हैं। जलवायु परिवर्तन के करण उत्पन्न होने वाली स्थितियों को कम करने और GHG उत्सर्जन को कम करने के लिये एक स्मार्ट दृष्टिकोण कार्बन का मूल्य निर्धारण है।

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund- IMF) ने आयात पर कार्बन लेवी लगाने की यूरोपीय संघ की योजना का समर्थन किया है।
- भारत कार्बन-गहन ईंधन से कर लगाने और स्विच करने में विश्व के पहले देशों में से एक हो सकता है।

कार्बन मूल्य निर्धारण

- यह एक ऐसा उपकरण है जो ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन (GHG) की बाहरी लागतों को कैप्चर करता है, यह लागतों का उत्सर्जन करता है जो जनता को फसलों की क्षति, हीट वेब्स और सूखे से स्वास्थ्य देखभाल की लागत और बाढ़ और समुद्र के स्तर से संपत्ति के नुकसान के लिये भुगतान करता है जो आमतौर पर उत्सर्जित कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) पर एक मूल्य के रूप में उन्हें कीमत के माध्यम से अपने स्रोतों से जोड़ता है।
- कार्बन मूल्य GHG उत्सर्जन से होने वाले नुकसान के लिये बोझ को उन लोगों में वापस स्थानांतरित करने में मदद करता है जो इसके लिये ज़िम्मेदार हैं।

GHG उत्सर्जन को कम करने की आवश्यकता

- दिल्ली में हीट वेब्स, तमिलनाडु में जल संकट, दक्षिण-पश्चिम चीन में बाढ़ और कैलिफोर्निया में इस वर्ष भयावह जंगल की आग ग्लोबल वार्मिंग से अस्तित्व के खतरे का संकेत हैं।
- भारत ग्लोबल क्लाइमेट रिस्क इंडेक्स, 2020 (Global Climate Risk Index 2020) में पांचवें स्थान पर है।
- ग्लोबल वार्मिंग में कार्बन डाइऑक्साइड सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाली GHG है जो कि विशेष रूप से औद्योगिक क्रांति के बाद के संचय के कारण 400 पार्टस/मिलियन के उच्च निशान को पार कर चुकी है।
- जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल (Intergovernmental Panel on Climate Change- IPCC) का कहना है कि कुल वैश्विक उत्सर्जन गतिविधियों में वर्ष 2030 तक वर्ष 2010 के स्तर से 45% की कटौती करनी होगी साथ ही वर्ष 2050 तक इसे शून्य तक पहुँचाने की आवश्यकता होगी।
  - यदि इन लक्ष्यों को पूरा नहीं किया जाता है तो विश्व के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र जो घनी आबादी वाले हैं और मुख्य रूप से वैश्विक रूप से दक्षिण में स्थित हैं उनकी उच्च भेद्यता और पहले से मौजूद उच्च तापमान के कारण सबसे अधिक नकारात्मक रूप से प्रभावित होने की संभावना है।

प्रभावशाली कार्बन लेवीज़

कार्बन कर क्या है ?

कार्बन टैक्स कार्बन-आधारित ईंधन (कोयला, तेल, गैस) के जलने पर लगाया जाने वाला शुल्क है। इसे जीवाश्म ईंधन के उपयोग को कम करने और अंततः नष्ट करने के लिये कोर नीति के रूप में देखा जाता है, जिसका दहन हमारी जलवायु को अस्थिर और नष्ट कर रहा है।

कार्बन कर लगाना

- एक स्मार्ट दृष्टिकोण इस प्रकार अब तक उठाए गए छोटे कदमों पर कार्बन निर्माण का मूल्य निर्धारण कर रहा है जैसे कि कुछ 40 बड़ी कंपनियों द्वारा कार्बन की कीमत तय करना, इलेक्ट्रिक वाहनों के लिये सरकारी प्रोत्साहन और वर्ष 2020-21 के बजट में एक पर्यावरणीय कर।
- कार्बन मूल्य निर्धारण उत्सर्जन व्यापार का एक और उपाय है अर्थात्, उद्योगों से स्वीकार्य अपशिष्टों की अधिकतम मात्रा निर्धारित करना और कम उत्सर्जन वाले देशों को उनके अतिरिक्त स्थान पर बेचने की अनुमति देना।.
- कार्बन कर को आर्थिक गतिविधियों पर लगाया जा सकता है उदाहरण के लिये कोयले जैसे जीवाश्म ईंधन के उपयोग पर जैसा कि कनाडा और स्वीडन में किया जाता है।
  - कनाडा ने वर्ष 2019 में CO_2 उत्सर्जन के 20 डॉलर प्रति टन के हिसाब से कार्बन कर लगाया जो अंततः बढ़कर 50 डॉलर प्रति टन हो गया।
  - वर्ष 2022 तक 80 से 90 मिलियन टन के बीच ग्रीनहाउस गैस प्रदूषण को कम करने का अनुमान है।

नोट :

कार्बन कर के लाभ और हानियाँ Pros and Cons of Carbon Tax	
लाभ	**हानि**
• यह कार्बन उत्सर्जन की नकारात्मक बाह्यता को आंतरिक करने के तरीके के रूप में सुझाया गया है, उपभोक्ता/उत्पादक उपभोग की पूरी सामाजिक लागत का भुगतान करेंगे।	• विभिन्न देशों की नीतियाँ 'कार्बन रिसाव' का कारण बन सकती हैं, जहाँ ऊर्जा-गहन व्यवसाय कम सख्त राष्ट्रीय शासन की ओर बढ़ेंगे।
• कार्बन कर नीति से मात्रात्मक सीमा की तुलना में कार्बन उत्सर्जन की कीमतों में कम अस्थिरता होने की संभावना है।	• कार्बन कर निवेश को हतोत्साहित करेगा और लाभप्रदता कम करेगा।
• यह उन वैकल्पिक संसाधनों की ओर परिवर्तन को प्रोत्साहित करेगा जो नवीकरणीय भी हैं।	• यह उन गरीब देशों को भी दंडित करता है जो वैकल्पिक स्रोतों पर परिवर्तित नहीं हो सकते हैं, विशेष रूप से कई अफ्रीकी और एशियाई देशों की तरह गरीब और विकासशील देश।
• राजस्व अर्जित करते समय अपशिष्टों में कटौती करना एक प्रकार का विकल्प है जिसका उपयोग अन्य वैकल्पिक संसाधनों की स्थापना में किया जा सकता है।	• कर की उचित मात्रा को लगाना मुश्किल है क्योंकि उत्पादित कार्बन का प्रमात्रीकरण सटीक नहीं हो सकता है।

आगे की राह

- भारत जैसी बड़ी अर्थव्यवस्थाओं को भी यूरोपीय संघ द्वारा परिकल्पित कार्बन टैरिफ लगाने के लिये अपनी वैश्विक एकरूपता का उपयोग करना चाहिये।
- राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित राष्ट्रीय योगदान के अंतर्गत भारत को वर्ष 2030 तक गैर-जीवाश्म ईंधन (Non-fossil fuel) आधारित ऊर्जा संसाधनों से लगभग 40 प्रतिशत संचयी बिजली उत्पादन क्षमता हासिल करना है और वर्ष 2005 के स्तरों से सकल घरेलू उत्पाद के उत्सर्जन के अनुपात को एक तिहाई कम कर दिया है।
- घरेलू रूप से कर और व्यापार के लिये बाज़ार-उन्मुख दृष्टिकोण और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं कूटनीति के माध्यम से दूसरों द्वारा इसी तरह की कार्रवाई हेतु प्रेरित करना।

निष्कर्ष

- व्यापार पर ध्यान केंद्रित करना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अकेले उत्पादन कार्बन-सघन रहेगा तो उत्पादन की घरेलू कार्बन सामग्री को कम करना नुकसान को कम नहीं करेगा।
- यह वर्ष 2030 से पहले मज़बूत कार्रवाई करने के लिये देश के हित में है, जिससे वर्ष 2050 तक कोई शुद्ध कार्बन वृद्धि नहीं होगी।

मुख्य परीक्षा प्रश्न : "जलवायु कार्रवाई के लिये सार्वजनिक समर्थन बढ़ रहा है, लेकिन हमें ऐसे समाधानों की आवश्यकता है जो भारत के हित में हों।" कार्बन मूल्य निर्धारण नीति के प्रकाश में चर्चा करें।

नोट :